UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182102

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY
Call No. H 81.6 V82N Acc No. GH 1528
Author : (,)
Title : 1944

SMANIA UNIVERSITY LIBRARY

H
No. 81.6
V82N

GH
Accession No. 1528

ior

This book should be returned on or before the date
narked below.

निराधार

मानव

प्रकाशक
विश्वम्भर मानव एम्. ए.
बनबटा, मुरादाबाद
१९४४

सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक : प्रदीप प्रेस मुरादाबाद

समर्पण

स्मृतियों की सजला छायाएँ
ये
उनको
जिनकी गाथाएँ
अत्यधिक आन्तरिक होने से
प्राणों के किसी गहन स्तर में
अङ्कित करलीं उच्छ्वासों से
जो छिपी रहेंगी
इस उस से
पर
साथ जायँगी
मेरी
अन्तिम
साँसों
के

—*मानव*

क्रमणिका

१ भाभी	... ...	१
२ चन्दा	... ...	१७
३ मीरा	... ...	२६
४ महामाया	... ...	३२
५ नरगिस	... ...	५३
६ श्यामा	... ...	६७
७ सुषमा	... ...	८३
८ मिस वायलेट	... ...	९१
९ आरती	... ...	९९

भाभी—

जब मेरा जन्म हुआ
रहते
घर में हम एक किराये के।
गृह के स्वामी थे धनी बड़े
सज्जन अनुपम
उनके था कोई पुत्र नहीं
उनकी पत्नी
करती थीं मुझको बहुत प्यार।
मेरी मा थीं निश्चिन्त
किन्तु वे
मेरा मुँह धोतीं
काजल वे
घना लगातीं आँखों में
नहलातीं मुझको
कपड़े नये पिन्हातीं वे।

प्रायः ऐसा होता
जब
मा के पास न जा
मैं उनकी छाती से लग कर
चुप सो जाता।
सोने से पहिले
संध्या को
अच्छी से अच्छी खाने की
जो चीज़ बनातीं
उसे खिलातीं निज कर से।
वे वाद्य बजाती थीं कोई
मैं चुप बैठा
सुनता रहता
फिर सो जाता।

मेरी मा थी
लावण्यमयी अनुपम
उसका है बहुत मधुर-सा नाम
किन्तु
वर्णन करने का रूप
विधान नहीं

मा
के,
उसको सम्बोधन नहीं नाम से करते हैं।
अपनी अपनी माताओं को
सब
केवल 'मा' ही कहते हैं
उसका चिर-परिचित यही नाम।
मैं माँ को
भाभी
कहता था।
भाभी ने मुझे कराया था
जग से परिचय
उसके स्वामी ले आते थे
ढेर से फूल
यह बतलाती
यह हरसिंगार
यह चम्पा है
यह कुंद
और यह है गुलाब।
रजनी आती

वह बतलाती
यह दीपक है
यह चंदा है।
ये तारे हैं
मेरी छाती से लगा हुआ
'तू'
मेरा प्यारा बेटा है!
भाभी ने मुझे कराया था
अपने सामने बिठा
मेरा
हिंदी भाषा के वर्णों से
सीधा परिचय।
यदि वह न पढ़ातीं
मैं कैसे
अपने मन की
बातें
तुम सब तक पहुँचाता?
यह मेरी भाषा
मातृभूमि सी
मा-सी

अपने प्राणों-सी
प्राणों में जो आनन्द निहित
वैसी ही
मुझको प्यारी है!

अपनी मा के घर चली गई
जब मेरी जननी एक बार
छोड़ कर मुझे
मुझको कुछ भी दुख नहीं हुआ
शायद न याद आई उसकी
एक भी बार!
मैं घिर भाभी के आस पास
प्रमुदित रहता।
लौटते पिता दस बजे
रात को;
उनमें है गुण एक
बहुत अच्छी कहानियाँ सुनाते हैं।
जब वे करते आरम्भ
एक चलते सौदागर ने देखा
शहर के बड़े व्यापारी के
घर के आगे

सोने की थाली में भोजन
कुत्ता करता
जो टुकड़े बचे
उन्हें लेकर
ज़ञ्जीरों से जकड़ा
भाई
व्यापारी का
अपना भर लेता पेट !
चकित होकर तब मैं
मैं भर कर आँखों में आँसू
मैं पास सिमट
पूछा करता,
भाई भाई के साथ
भला
ऐसा क्यों करता है बापू ?
बापू करते प्रारंभ
बात अपनी
समाप्त
जो नहीं महीनों हो पाती ।
करुणा कौतूहल भरी कहानी

यह कुत्ते सौदागर की
जिन दिनों चल रही—
एक दिवस
दो पहरी को
भाभी ने खीर पकाई
संध्या घिर आई
पर
मुझे खिलाई नहीं
क्षुब्ध
मैं अभिमानी
मैं झुँझलाहट से भरा
नहीं उतरा छत से
जब आए बापू लौट
कहानी सुनने को
मैं आतुर
आते ही
बोला,
हाँ बापू फिर ?
बापू बोले : मैं थका हुआ हूँ
आज कहानी बंद

सुनाऊँगा कल को।
मैं बोला : अभी सुनूँगा मैं।
वे बोले अभी सुनेगा तू
तो सुन
इतना कह
इतना मारा घूँसों से
जम कर ठोकर दी एक
अधमरा-सा मैं
चीख़ उठा सहसा !
छत के ज़ीने पर दृष्टि पड़ी
देखा
मेरी
भाभी कोने में खड़ी हुई।
मैं यहाँ वहाँ गिरता पड़ता
दौड़ा भाभी के पास
गोद में भर कर वह
नीचे कमरे में ले आई।
मुझको सहलाने लगी
पूछने लगीं
हुई क्या बात ?

मुझे आया सहसा तब ध्यान
कि इस भाभी ने ही
तो नहीं खिलाई खीर !
छुड़ाता हाथ क्रोध मे बोला मैं
मुझको छोड़ो
मैं नहीं रहूँगा यहाँ
तुम्हारे पास नहीं सोने वाला,
तुम मुझको प्यार नहीं करतीं।
बापू ने पीटा हमें
हमें मा
छोड़ अकेली चली गई
नानी के घर
अब तुम भी प्यार नहीं करतीं
हम रो रो कर मर जायेंगे
पर नहीं जायँगे पास
किसी के।
घबरा कर
भाभी बोली,
क्या बात अरे !
ऐसी बातें क्यों करता है !

मैं बोला : अच्छा बतला
तैंने खीर पकाई थी !
कैसे
फिर नहीं खिलाई मुझे !
कहा भाभी ने तब :
बेटा रे सुन
तू नहीं समझता ये बातें
तुम ब्राह्मण हो हम वैश्य
हमारा 'कच्चा' खाना
तेरी मा क्या खा सकती ?
मैं बोला : मा की बात नहीं
मैं करता हूँ अपनी बातें
यदि कच्ची थी वह खीर
पका लेती थोड़ा ।
वह बोली : पागल रे !
हरगिज़
तू समझ नहीं सकता·····यह सब
धर्म की बात !
मैं बोला : अच्छा छोड़ मुझे
तू रख ले अपना धर्म !

लगी रोने भाभी
बोली : मेरा तू धर्म !
मगर तेरी मा से
बेटा मुझको डर लगता है !
मैं बोला तो फिर छोड़ मुझे
मा से डर ले ।
वह छाती से चिपटा बोली
मेरा राजा बेटा तू कितना अच्छा है
मैं बोला : अच्छा अभी पका फिर खीर
खिला
मुझको
या कह
तू मुझको प्यार नहीं करती ।
कहदे सच सच
क्यों डरती है ?
भाभी हो गई परास्त
हो गया भय परास्त
मेरी मा का
हो गया पराजित धर्म !
जिस घड़ी खिला रही वह मुझे

और मैं
अपनी अँगुली में भरकर
उसके मुँह में दे खीर
कह रहा
तू भी खाती जा भाभी !

फिर हमने छोड़ी वह बस्ती
भाभी देहली को चली गईं
परिवार सहित
मैं बड़ा हो गया
बीत गए पच्चीस वर्ष !
मैं देहली में !
जाने कैसे
सहसा उमड़ी भाभी की सुधि ?
यह कौन हृदय में
चुप रहता
जो लगातार पच्चीस वर्ष ?
फिर जब उसके मन में आता
चुप कानों मे
दुहरा देता कोई घटना;
हम वर्तमान को भूल

पहुँच जाते शैशव के आँगन में !
ताँगे वाले से पूछा :
उस कपड़े की मिल के मैनेजर
के घर का तुम्हें पता है कुछ ?
बोला : क्यों नहीं ? चलें चलिए !
मैं डूबा अपने मानस में
चुप सोच रहा :
क्या मेरा चलना उचित ?
कौन कह सकता है
भाभी के उर में जो मा थी
वह मरी नहीं !
संभव है वह इस परिवर्तन में
मुझे न भी पहचान सके !
मैं परिचय दूँ
छू भी लेने दे चरण मुझे।
पर मैंने चाहा भुजा बढ़ाकर
डाल गले में उन्हें
कह उठूँ
मैया री !
तू भूल गई कैसे मुझको ?

क्या तुझको आई कभी याद
उस बालक की
जिसको तू ने
अपनी मुसिकानों से
लोरी से
अश्रु
अनिद्रा से पाला ?
आश्चर्य-चकित हो
क्या वह
मुझे न झिटकेगी
मेरे इस बेहूदेपन पर ?
मैंने संकट झेले, कितने
वह उन्हें सुनेगी—
श्रम
लज्जा
अपमान
मान की
पाप
पुण्य की
घटनाएँ ?

क्या वह उतना ही रस लेगी ?
जितना पहले रस लेती थी
मेरी तुतली सी वाणी में ?
ताँगे वाला बोला : बाबू जी उतर पड़ें *
मैं बोला : क्या है ? चले चलो !
बोला वह : यह ही तो हुजूर फाटक है
जिसके कोने पर
पीतल का बोर्ड लगा
उसमें अंग्रेज़ी में है खुदा नाम !
मैं डूब चला

यदि उसने किया
अतिथि का सा
आदर
तब उस मेरी मा की
भाभी की
मूर्ति विकृत होगी !
इस दर्शन की उत्कंठा पर
क्या मैं अपनी मा को खो दूँ ?
खो दूँ वह नेहमयी भाभी
ताँगे वाले ने फिर टोका

उतरें हुजूर !
मै बोला :
लौट चलो पीछे !

———

चन्दा—

अपनी बस्ती की टूटी सी
जो रही पाठशाला
उसके
अध्यक्ष
जाति के ब्राह्मण थे
पर उनके सिलबिल्ले पन से
उनको कहते सब मुंशी जी !
मूँछें लम्बी औ झुकी हुईं
ओंठों के कोनों से सटकर
रेखायें यथा समानान्तर,
गर्मी जाड़े का एक कोट
था पैंतीस साल पुराना जो
पाजामे में थेगली टकीं
जाने कितनी
थानेदारों की सी

छोटी
पैनी
आंखें !
खोपड़ी हमेशा घुटी हुई
कड़वे तेल से सनी
उस पर
जमकर
फबती थी फैल्ट कैप !

मुंशी जी थे कंजूस बड़े,
निर्दयी बड़े,
उनको थी किस बात की कमी ?
तेली, कुम्हार, माली, बढ़ई, बनियों के बच्चे पढ़ते थे।
आजाता सबकुछ—
तेल घड़े, तरकारी, लकड़ी, घी, आटा।
वे कुछ भी कहते न थे कभी
जिससे जो कुछ मँगवाना हो
दे देते चार कड़े सवाल
'कल तक हल करके नहीं ला सके
तो उड़ जायेगी चमड़ी।'
लड़के सवाल तो क्या लाते !

ले आते लकड़ी, घी, आटा !
मुंशी की बाछें खिल जातीं।
कोई देर से अगर आता
जुर्माने में
वे कभी न लेते थे पैसे
बच्चों को इससे दण्ड नहीं मिलता
मिलता
मा बापों को
वे कहते थे;
पर ले लेते
बदले में लकड़ी, घी, आटा !
कोई अनुपस्थित रहा
रोग-शय्या में पड़
या भाई की शादी में चला गया कोई
मुंशी को इससे क्या मतलब ?
उसकी संटी तैयार सदा
संटी की पूजा होने से
पहिले
लड़के
रख देते

लकड़ी, घी, आटा !
मुंशी मूछों को हिला, सिर हिला
गद्‌गद हो
पीली कौड़ी सी आँख मूँद
कहता धीरे
'गुरुभक्त' इसी को कहते हैं
कोई दर्शक यदि आ जाता
रटवा छोड़े थे कुछ सवाल
"बोलो लड़को !
निकली हैं कितनी नदी
हिमालय पर्वत से ?"
सब लड़के हाथ उठा देते ।
"हम रहते जिस मुल्क में
बताओ उसका है क्या नाम ?
कौन बतलायेगा ?"
लड़के कहते तब बढ़ बढ़ कर
सीने में घूँसा मार मार
" मुंशी जी मैं ? मैं मुंशी जी ? "
" जिसको कहते पंजाब सभी
क्यों कहते हैं पंजाब उसे ?

रग्घू ? ”
रग्घू की जगह बोल उठता
घूरे
मुंशी जी हँस पड़ते
कहते इस में कुछ हर्ज नहीं ! ”
जब तक इस बिगड़े हुए देश में
साम्यवाद की
ए. बी. सी. का पता न था
उससे पहिले मुंशी अपना
अपने ढँग से
इस मत का पूर्ण समर्थक था ।
वह छुट्टी देने से पहिले
सुनता बीस तक पहाड़े था ।
यदि हुई किसी से भूल
गरज कर कहता, “सूअर के पट्ठो
फ़ौरन सब मुर्ग़े बन जाओ । ”
एक का रहा अपराध
किंतु कसकर रूलर पड़ता सब पर !
हम सब कराहते
‘ हाय मर गए मुंशी जी ! ’

इतने पर था संतोष नहीं।
हम सबको
बारी बारी से
करना पड़ता था
मुंशी का चौका बरतन।
उस काल हमारे बीच रही
सागर पंडित की छोटी सी
चंदा लड़की।
जिसका मुखड़ा
छोटा-छोटा!
गोरा-गोरा!
कोमल-कोमल!
भोला-भाला!
प्यारा-प्यारा!
मीठा-मीठा!
मार तो न पड़ती थी उस पर
वह लड़की थी;
पर चौका-बरतन की बारी
उसकी भी आई एक दिवस।
छुट्टी से पहिले मुंशी जी

जब खोल रजिस्टर दोबारा
हाज़िरी ले रहे
रुक रुक कर,
मैं बोला डरते, " मुंशी जी
कूए पर पानी पी आऊँ ? "
मैं पहुँचा चंदा के समीप
बोला—" चंदा !
साले की ताली में भर दे
कङ्कड़ी ठूँस
कह देना ताला खुला नहीं
कैसे करती चौका-बर्तन ?
कूए के पास पेड़ है जो
मैं अभी झुका कर डाल
तोड़ कच्चे अमरूद कई लाया।"
यह चोर हाथ मेरा
जब तक
अमरूदों पर था पड़ा नहीं
उससे पहिले
मुंशी का चाँटा पड़ा
कनपटी पर कस कर।

कमरे में ले आया घसीट
लकड़ी की चौकी जहाँ एक
जिस पर हुक्का रक्खा रहता
पाये के नीचे दबा उसी के
हाथ
मचक कर बैठ गया।
मूर्छित सा मैं.....
मेरी आँखों से बरस पड़े
टप !
टप !
आँसू !
यदि खिड़की के बाहर
बूँदें !
दो !
टपक
गाल पर
वहीं
उन्हें
मैं
देख

नहीं
पाया
उस
क्षण !
मैं
भूल
नहीं पाया
अब
तक !

———

मीरा—

जब मैं ले चुका
नवाबगंज की
दूकानों से
कापी, पेन्सिल, लिप्टन की टी, मेज़पोश
मैं हॉस्टेल जाने को उद्यत,
कर सड़क पार
ताँगे के उड़ते घोड़ों की टापों से अपने प्राण बचा
बालिका एक
दस-ग्यारह की
मैले चिथड़े !
पतली-दुबली
गेंहुआ रँग !
मेरी क़मीज़ का छोर पकड़
दीनता पुतलियों में भर कर
सूखे ओठों को तनिक उठा

कर फैलाती
करुणा-प्लावित स्वर में बोली
" बाबू दिन भर की भूखी हूँ ! "
मैं झटक उसे बोला " चल, हट ! "
पर उसने साथ नहीं छोड़ा !
" तुम काम नहीं कर सकतीं कुछ ? "
" क्या काम ? "
" ले चलो ये चीज़ें
पैसे देंगे दो तुम्हें पहुँच कर हॉस्टेल में । "
मैं बोला. " तेरा नाम ? "
" नाम मेरा मीरा । "
" किसने रक्खा यह नाम ? "
" हमारे चाचा ने । "
" जीते तेरे मा-बाप ? "
" बाप तो नहीं
बहन दो
भाई दो
अम्मा है
शेरा कुत्ता है
मैं हूँ··· "

"अच्छा,
तू पढ़ती फिर क्यों नहीं ?"
चौंक कर वह बोली,
"हमको बाबू
दुनिया में कौन पढ़ायेगा ?"
मैं लगा देखने उसके भोले मुखड़े को
मैं लगा सोचने उसके सीधे उत्तर पर
इस पुण्यदेश की
गर्हित
वर्ण-व्यवस्था पर !
ज्ञान के विशिष्टों द्वारा अधिकृत होने पर !
क्षण भर को उमड़ी दया
किंतु पाकर कगार
सीमित-सी स्थिति का
बह न सकी !
कमरे में आकर बैठ गया।
वह बोली डरती, "बाबू जी
मैं बहुत देर से प्यासी हूँ।"
"सामने सुराही रखी
उठा ले वह गिलास

पी ले पानी ! "
" मैं तो ज़ात की चमारी हूँ ।"
मैं बोला, " मैं भी हूँ चमार
चल पी पानी ! "
वह पीती जाती
रोती जाती
मुझे देखती जाती थी ।
जब वह चलने को हुई
दिया मैंने रुपया ।

मैं लगा घूमने कमरे में
फिर हुआ भाव वह शांत
वृत्ति दूसरी उगी—
मैंने भावुकता मे आकर
खो दिया रुपया एक ।
नया यह बात नहीं
रेल में हमेशा मिल जाते
गौ-शाला
विधवा-आश्रम के
संरक्षक !
या फिर सड़कों पर फिरते हैं

जिनका सब कुछ बह गया
बाढ़ में
या रस्ते में
चुरा ले गया धन कोई !
हम क्षण भर की भावुकता में
बह जाते हैं
ठग जाते हैं
माँगना आजकल कला एक ।
मैं क्षुब्ध हुआ
फिर खिड़की के बाहर ताका
सामने नीम की टहनी पर
बैठे थे तोते तीन
लीन
मैं हुआ उसी हरियाली में !
फिर परिचित स्वर में कहा किसी ने " बाबू जी ! "
देखा मीरा सामने खड़ी
झुँझलाहट के स्वर में बोला,
" अब क्या बाक़ी रह गया ?
तुम्हारा भैया, अम्मा, नंगे हैं
कपड़ा कोई मिल जाय ? "

दीन-सी सहमी-सी
वह बोली, "नहीं...नहीं...बाबू !
मैं रुपया लाई तुड़ा
मजूरी के पैसे
ये मेरे दो
ये रहे आपके भी—
साढ़े पन्द्रह आने ।"

———

महामाया—

कॉलेज जीवन की
शत शत स्मृतियों में से
अब भी बची एक—
जो पीड़ा दे उठती जब-तब।
कैसे विनोद से हुआ मेल
कैसे घनिष्टता बढ़ी
नहीं कुछ याद आज।
वह धनी पिता का पुत्र
न पढ़ने में अभिरुचि
आगयी परीक्षा निकट
पूछने जब तब आजाता मुझ से
कोर्स की बात।
हम साथ साथ जाते पिक्चर।
जब एक बार
आया 'निशात' में देवदास

मैं पाँच बजे ही
जा पहुँचा विनोद के घर ।
घर पर विनोद था नहीं
उस समय मा उसकी
चावल, पकौड़ियाँ, पूए पका रही, बोली,
"अच्छा आया बेटा, खाले ।
माया ! ए माया ! बिठा इसे ।"
माया विनोद की बहिन तीसरी
दो का हुआ विवाह,
पढ़ रही माया थी उन दिनों 'बालिका विद्यालय' में
इण्टर में ।
माया आकर्षणमयी
रूपसी
बड़ी बड़ी काली आँखें
रसभरी, मदभरी, स्नेहभरी ।
जब चंपा पकने पर आती
वैसा ही कुछ कुछ पीत वर्ण ।
इतना उजला
इतना सुकुमार शरीर
कि उसमें उँगली छू जाती

लगता
मानो विवर्ण हो जायेगा !
माया के लम्बे, घने, सुनहरी केश
बनाकर चोटी दो
आगे उनको डाले रहती ।
मेरा स्वभाव
जिससे रहता सम्बन्ध
वही सब कुछ मुझको ।
मेरा आना जाना घर में
माया से कोई
संभाषण का
कभी नहीं अवसर आया !
जिस घर में आता जाता हूँ
विश्वास नहीं खोता उसका
विश्वासघात मैं वहाँ नहीं करने वाला ।
था मेरा वह साधना-काल
आकर्षण की बातों पर प्रायः ध्यान नहीं देता था मैं ।
आकर्षण गति कुंठित करने
हिस्ट्री, इंग्लिश के
मोटे मोटे पोथे ही

क्या कम थे
कुछ ?
जब मैं खाना खा चुका
हाथ धो चुका
कहा मैंने धीरे, " तौलिया चाहिए । "
माया ने ढूँढ़ा क्षण भर तो इधर उधर
" कम्बख्त तौलिया किधर गई ? "
अपनी धोती के पल्ले को
फिर आगे कर
चुप खड़ी रही ।
मैंने संकोचरहित होकर पोंछे चुप दोनों हाथ ।
तश्तरी माया ने
अपने हाथ में उठायी जब
मैं बोला, " इसको रहने दो
नौकर से कह दो ले जावे । "
उसने चुप कोने में जाकर
मेरा जैसा अनुमान
तश्तरी में जो बचा हुआ था कुछ
उसमें से छोटा सा किनका
मुँह में डाला ।

मैंने
आशंकित हो,
सहसा
आना जाना कर दिया बन्द ।
फिर सुना एक दिन
माया है बीमार पड़ी
मैं नहीं रात को सो पाया
मेरे मन में
कुछ बात न थी
पर फिर भी माया का मुखड़ा पीला पीला
घूमता रात भर रहा;
हुआ ज्यों ही प्रभात
मैं घर पहुँचा
चाची सिरहाने बैठी थी
माया की आँखें बन्द
कहा उसने, "पानी !"
जब चाची उठने लगी कहा इंगित से मैंने बैठी रह
मैं लाता हूँ ।
मैंने शीशे के प्याले में
लेकर पानी

माया के सूखे ओठों को
तर करने को
चम्मच से भर मुँह में डाला।
माया ने उस बेहोशी में
मेरी थाम कर कलाई को
धीरे से खोली आँख
और फिर भर विरक्ति सी आँखों में
मुँह फेर लिया।

× × × ×

तीसरे साल जब माया बी. ए. पास हुई
पत्रों में निकला विज्ञापन
मैं उसे चिढ़ाने को यों ही
घर पर पहुँचा।
इस बीच होगया था आपस में समझौता।
आने की हठ पर
मैंने माया से चाहा
भाई बन कर आसकता हूँ
भाई बन कर रह सकता हूँ
माया थी इतना मान गई।
वह आशंका जब दूर हुई

तब हम तीनों—
माया, विनोद, मैं—
जब घर पर मैं जाता था
एक ही थाल में
खाना खाते
हँसते जाते
बीच बीच में
चाची को भी छेड़ कभी
मन भर कर उसे चिढ़ाते थे।
मैं बोला, "ए पागल, कोई फोटो-वोटो भी आया है?"
वह बोली, "आए हैं। अब इंटरव्यू भी होने वाला है।
लेकिन मेरे अंतर में जो
छवि अंकित है
वह इन सब से भी सुन्दर है।"
मैं बोला, "माया तू तो दुष्ट बड़ी निकली
इतने दिन तक
तू रही छिपाए भेद
अगर विश्वास आज भी हो तो
कह।"
माया बोली, "है व्यर्थ छिपाना

रात
बढ़ गई बात बहुत
मैंने बाबू जी को लिख कर
दे दिया पत्र
"तुमने चाची ने मुझे रक्त से पाला है
विद्रोह नहीं करने वाली
तुम जहाँ कहोगे वहीं चली मैं जाऊँगी
पर तुम्हें इष्ट यदि मेरा सुख
तो……"
मैं बोला,
यह रहस्यवाद की बात
मुझे भाती न तनिक
तू मुझे बता
तू मेरी छोटी बहिन
समस्या क्या गंभीर उठा डाली ?
यद्यपि मैं बाहर का
फिर भी
तेरे दुख को
कुछ बाँट सका,
मैं ही उपाय कुछ सोच सका

तेरे सुख का
तो तुझे बहिन कहने वाले अंतर को तुष्टि बड़ी होगी।
माया का चेहरा उतरा-सा
वह रोती
मेरे कंधे पर
सिर रख बोली,
"हम हों न दूर।"
मुझको सहसा
जैसे बिच्छू ने काट लिया।
उसका सिर उठा
एक चाँटा
गाल पर दिया
पाँचों उँगलियाँ उछल आईं।
माया की शादी हुई एक ऑफ़ीशल से
जब स्टेशन पर
मैंने दोनों को विदा किया—
वह अपना हाथ मिलाकर
मुसिका कर
नयनों में कोमलता
भर कर

बोले हो आर्द्र,
'याद रखना भाई ! '
एम. ए. करते ही
'३८ की जुलाई थी
होकर हिंदी का अध्यापक
कानपुर त्याग
गुरुभार उठाने कर्म क्षेत्र का
सजग
क्रीस कालेज में काशी के आया ।
घर वाले तब घर पर ही थे
छोटे से घर में समय काटता एकाकी ।
माया के पति का पत्र मिला
" प्रियवर मानव,
जब मैं माया को प्रथम देखने आया था
माया ने था स्वीकार किया
मैं प्रेमपाश में बद्ध किसी मानव के हूँ
मुझको कोई आपत्ति नहीं
मैं हृदय नहीं दे पाऊँगी लेकिन तुमको ।
उसकी इस स्पष्टवादिता से
उस साधारण सी खद्दर की साड़ी से

जिसको पहना था
उसने लावण्य छिपाने को अपना अनुपम
पर वह दूना था दमक उठा
मैं और प्रभावित हुआ
यही सोचा उस क्षण
मैं युवक
स्वस्थ मैं
रूपवान
मैं शिक्षित
पी. सी. एस
कला जीवन की थोड़ी ज्ञात मुझे।
ऐसा होता ही रहता है
मैं जीत सकूंगा हृदय एक दिन माया का।
उन तीन दिनों में
यों तुम पर भी दृष्टि रही
मन के पाप को छिपाऊँ क्या ?
पर ऐसी कोई बात न थी
तुम पर संदेह जमाता मैं।
जिस दिन माया से बात हुई
मैंने पूछा, "कोई आज्ञा ?"

वह बोली, "पहिली अनुनय है
मेरे शरीर को छूना मत।"
परिणय का अभिनय चलता है
इस रंगमंच पर जीवन के।
माया प्रायः
भूली सी बैठी रहती है।
मैं क्लब में, पिक्चर, कभी पार्टियों में टी की
जब जाने को कहता
कहती
'तुम मेरे ऊपर दया करो।'

धन है
यौवन है
पोज़ीशन
उद्दाम भावनाओं से पूरित
मन है
साधन हैं सारे
वेश्यागामी हो सकता हूँ
हो सकता हूँ मदिरासेवी
घर पर बैठे मैं जो चाहूँ कर सकता हूँ।
पर मैं प्रतिशोध भावना से

यदि बह जाऊं
तो मेरी शिक्षा व्यर्थ।
आज मेरा कौशल
सब व्यर्थ होगया है भाई !
माया जितनी होती विरक्त
उतना आकर्षण बढ़ता है।
यह दीपशिखा
केवल जलकर
आलोकित किए बिना उर-गृह
क्या ऐसे ही बुझ जाएगी ?
मैं कभी कभी समझाता हूँ
माया !
मुझको
मानव ने था विश्वास दिया
माया तो उसकी बहिनमात्र।
वह क्रोधित होकर कहती है
"कहने दो
ऐसा कहना तो
एक ही ओर का निर्णय है
इस कहने से क्या होता है ?"

मैं कभी सोचता हूँ, भाई
माया की हत्या कर डालूँ
हत्या कर डालूँ मैं अपनी
पर फिर मुझसे
युग युग के इस स्वातंत्र्यभाव का
जिसे दिया है शिक्षा ने
सम्बन्ध कहाँ ?
जब मैं कहलाता सभ्य
मानता सभ्य स्वयं को
उद्घोषित
करता विचार स्वातंत्र्य पक्ष को
ऐसा कुछ कैसे करदूँ ?
मैं मर्यादा
अधिकार-भाव
या वंश-प्रतिष्ठा के झूठे
आवरणमात्र में
अपनी इस असफलता को
कौशल कह आज छिपाऊँ क्या ?
मेरा जीवन तमपूर्ण
कंटकाकीर्ण

किन्तु मैं
भरूँ महामाया का पथ
क्यों काँटों से ?
मेरी दुर्बलता मत जानो
अपनी माया के प्रेम बिना
मेरे जीवनपल भार एक !
मैं माँग चुका फैला अंचल
प्रेम की भीख
वह दे न सकी
मैं माँग रहा तुमसे भाई !
मेरी आँसू की शय्या पर
मेरी माया को लौटा दो !
सस्नेह
तुम्हारा
.....एक बंधु ।"

मैं रहा घूमता कालेज गार्डन में
फिर चक्कर सा खाकर
थामकर तना मोटा
अशोक का
खड़ा रहा

कुछ देर
लौटने पर संज्ञा
फिर घर लौटा।

जगते जगते
सोया ही था
इतने में साँकल दरवाजे की खटक उठी
मैं उठ बैठा
झुँझलाया मा
कौन है
चैन जो अर्द्ध रात्रि में नहीं मुझे लेने देता!
देखा ठाकुर ताँगे वाला
'क्या है ठाकुर?'
"बाबू जी मिले इनाम, बहू जी आई हैं।"
चढ़कर देखा
तो सन्न रह गया
ताँगे से
ले टार्च हाथ में
उतर पड़ी
अपनी कृशता उज्ज्वल करती
महमा

माया !
' कौतूहल कर दूँ शांत प्रथम
घर के पथ में पड़ती काशी
मैं उतर पड़ी
मिस कर दी है यह ट्रेन
भेंट अंतिम समझो ! '
" तू भी पागल आई उस क्षण
जिस क्षण माया ! तेरा भाई
तेरा स्वागत तक कर न सके ।
आगमन एक तो आकस्मिक
अंतिम कैसा ? "
" अंतिम ही है यह भेंट
एक्स-रे हुआ अभी
मैं क्षय-पीडित ।
कहना सुनना सब व्यर्थ
व्यर्थ है अब उलाहनों का देना
पर इतना रखना याद
तुम्हें
माया ने जितना प्यार किया
जीवन भर भी

उसका आधा
कोई न करेगी प्यार तुम्हें !
यह हाय तुम्हारी भावुकता
कविता तक बद्ध रही
न मिला
उसका शतांश तक हमें कभी !
मैं आँधी सी आई
अपने ही पथ को भर कर चली आज !
मैं बिजली सी उतरी
प्रकाश से अपने ही
अपनी आँखों में चकाचौंध
होने से आगे बढ़ न सकी !
मैं उठी लहर सी किसी क्षुब्ध सागर की
टकरा टूट गई
पथ के निर्मम पाषाणों से !
औ' मैं मर कर
बन कर तारा भी
तुम्हें दृगों में भर कर भी
क्या शांति कभी पा जाऊंगी ?
उल्का सी टूट किसी क्षण में

शून्य में भटक
हो जाऊँगी
सहसा विलीन
तमभरे वक्ष में
अंतरिक्ष की
आकुल पवन हिलोरों के !
निर्मम !
मेरी पीड़ा
जिसने
बड़वानल के आकुल समुद्र के उर से होड़ लगाई है
तुम समझोगे ?
मेरे यौवन को पता नहीं,
वह कब आया ?
कब चला गया ?
मेरी सुहाग की साड़ी पर
उफ़ !
पड़ी नहीं सलवट तक भी !
तुम बैठे हो
लेकर गंदा आदर्शवाद !
इस सड़े हुए

मिथ्या आचारों के शव को !
धिक्कार तुम्हें ! "
मैं बोला, " माया नहीं आज तक
देख सका
कोई प्राणी
मेरे आँसू
पर लगता है
तू आज ठान कर आई है
अपने मन में
तू उन्हें देख कर मानेगी । "
माया बोली " मेरे मन का
तूफ़ान शांत ।
तुम बुरा हमारा मान गए ?
हम तो मरने को बैठे हैं ।
तुम और पास को आजाओ ।
यह माया की
कोई अनुनय-मनुहार नहीं,
अंतिम आज्ञा है !
लाई हूँ
मैं

थोड़े से फल
उन्हें काट कर
आज खिला लूँ
तुम्हें
और फिर
तुम हँसकर
हमको कर देना विदा !
और जब मर जायें
मन में
उदास···
मत होना···
तुम !"

———

नरगिस—

होगया कानपुर में दंगा
दंगे होते ही रहते हैं
दंगा पौरुष का लक्षण है !
ये हृष्ट बलिष्ठ पुष्ट पंडे
दो जून छानते ठंडाई
कंधों पर डाल अंगोछों को
हाथों मे मोटे डंडे ले
सुरती मलते
पानों से भर भर गाल
सड़क पर घूम रहे हैं मस्ती में।
आपस में करते बात
बात समझाते हैं कुछ वाणी से
कुछ बिखरी अंग-भंगियों से
उच्छृङ्खल अट्टहास से कुछ
इस पर भी यदि कुछ शेष रहा
तो ज़ोर ज़ोर से हूदा उनकी लाठी का
धम् धम् ध्वनि करता हुआ सड़क की छाती पर

समझाता रहता है रुक रुक !

ढाई मन के
ये स्वस्थ क़साई
तंग ढकी दूकानों में
तैमद बाँधे
मूछें मरोड़
पत्थर की छोटी टुकड़ी पर
पैना कर कुंठित छुरा
काटकर माँस बेचते पशुओं का ।
ये दृढ़ बाज़ू !
ये दृढ़ मुट्ठी !
ये भ्रकुटि वक्र !
ये रक्त नयन !
ये तेज़ छुरे !

नगरों में मन्दिर मस्जिद की कुछ कमी नहीं
मन्दिर में टुकड़ा एक
गाय की हड्डी का
पहुँचाना कुछ भी नहीं कठिन ।
मस्जिद में टुकड़ा शूकर की हड्डी का
रखना क्या मुश्किल ?

कैसे आया ?
रख गया कौन ?
रखने वाले का क्या आशय ?
यह नहीं पूछता है कोई ।
यह नहीं सोचता है कोई ।
यह नहीं जानता है कोई ।

बस क्षण भर में
उठ गईं लाठियाँ
लपक
झपट
नर मुंडों की वे त्रस्त भीड़ पर टूट पड़ीं
'हर-हर शङ्कर !'
बस क्षण भर में
वे तीक्ष्ण छुरे
घुसते लाखों की छाती में
चीरते कहीं
अबलाओं···!
वृद्धों·····!
बच्चों को·· ·····!
ध्वनि गूँजी

'अल्ला हो-अकबर !'
होगया कानपुर में दंगा
दंगे होते ही रहते हैं
दंगा धार्मिक की शोभा है !
दंगा धर्म की पताका है !
मुझको था कुछ भी पता नहीं
मैं उतर जंकशन पर जिस क्षण
बाहर आया
नीरव निशीथ
था पहने एक शेरवानी ।
ताँगेवाले ने कहा
"शहर में अभी सनसनी बाक़ी है
मुझको कहते हैं अब्दुल्ला
रुपया तो लूँगा एक
मगर पहुँचा दूँगा कोठी पर ही ।
रात का वक्त, ख़तरा भी है
उस पर हुजूर परदेसी है
इतना सा है मुझको लिहाज़
कोई हों, मुसलमान तो हैं ।"
मैं हँसता रहा, सोचता था

'अच्छा ही है
पहने हूँ आज शेरवानी'
गंभीर मुखाकृति से बोला,
"अच्छा रख लो सामान, चलो।"
सुनसान भयङ्कर अर्द्ध रात्रि में
चला जारहा था ताँगा।
मुड़ गई सड़क
फिर आई चौड़ी गली एक।
"ताँगेवाले! थोड़ा रुकना
यह घर जो देख रहे हो तुम
इसमें रहते मिस्टर नसीम
मैं था जब यहाँ पढ़ा करता
तब एक रात
पिक्चर-हाउस में हुई अचानक मुलाक़ात
अब पता नहीं कैसे होंगे!
तुम गाना नहीं जानते क्या?
रहने ही दो!"
'अच्छा तुम बढ़ो' कहा था ही
ताँगे वाले पर पड़ी चोट
मैं उतर पड़ा

मेरे कंधे पर उतर गए दो तीन वार।
फिर बहुत देर में खुली आँख
ताँगे वाले का पता नहीं
मैं एक चारपाई पर था
कुर्सी पर बैठा था नसीम
घबराया सा;
सामने खड़ी गंभीर बनी मेरे नरगिस।
"नरगिस! ओहो!"
मुँह से कराहता ओठों से हँसकर बोला,
"पानी तो ला!"
नरगिस बोली, "भैया हम तो···"
मैं बोला, "हाँ, हाँ, मुसलमान तू···
आगे कुछ भी और कहा
तो अभी अभी पिट जायेगी।"
फिर हुआ प्रात
मै बोला, "मुझको जाना है।"
बोला नसीम
"बढ़ गया शहर में फिर दंगा
तुम अभी नहीं जा पाओगे।"
बोली नरगिस,

"अब तक कराहना बंद नहीं
ये जायेंगे !
मुँह तो देखो !
उजली निकलेगी आज धूप
मैं थोड़ा मलकर तेल
तुम्हारी आह-ऊह सब ख़त्म करूँ।"
मैं बोला, "नरगिस तुझ से ऐसा छोटा काम नहीं लूँगा"
नरगिस बोली, "यह बात नहीं
मैं बड़ी हो गई हूँ थोड़ी
जब बहिन बड़ी हो जाती है
भाई को छूना है गुनाह।
है यही बात ?
तुम समझ रखो
अब मैं रोने ही वाली हूँ।"
मैं बोला, "अच्छी पागल है !
इसमें रोने की कौन बात ?"
इतने में आया युवक एक
लंबा शरीर, प्यारा मुखड़ा
पर आँखों मे खेलती घनी शैतानी थी।
नरगिस चुप से उठ गई

काम कुछ बतला कर ।
मुझसे धीरे बोला नसीम
" ये मेरे बड़े मुलाक़ाती "
उससे बोला;
" ये मेरे गहरे बड़े दोस्त "
मैं रहा वहाँ दो तीन दिवस
उसका आना जाना था ही ।
उस तीव्र घाम में हाँफ हाँफ
बैठी नरगिस
जब तोड़ रही मेरे कंधे ।
उस सांध्यकाल में जब चुप चुप
वह खिला रही मुझको खाना
तब भी वह बैठा रहा पास ।
फिर चौथे दिन की हुई साँझ
था स्तब्ध पवन,
दिनकर विलीन.
मुद्रित शतदल,
नक्षत्र मूक !
बाहर कुछ कोलाहल सा था
"खोलो किवाड़

बाहर कटते हैं मुसलमान
तुम घर में छिपा रहे हिन्दू !
खोलो किवाड़ ! "
नरगिस बोली, " मेरे अल्ला
अब क्या होगा ?
भैया···! " फिर दृढ़ स्वर में बोली.
" है यहाँ नहीं कोई हिंदू
कोई न यहाँ पर मुसलमान
हम खोल नहीं सकते किवाड़ ! "
फिर ध्वनि आई, " खोलो किवाड़
हम घर में आग लगा देंगे
तुम सब जल कर मर जाओगे । "
इतने में टूट गए किवाड़ !
मैंने नरगिस को पीछे कर
चाहा आवेश बुझा देना ।
हम जिसे समझते मित्र रहे
उसने कसकर
मुझ पर था छुरा झुकाया ही
आगया बीच में चट नर्सीम
खागया कलेजे में उसको

घबराकर भाग गए साथी
रह गया वहाँ पर हत्यारा
उसकी गर्दन को पकड़
बड़ी भर्राई कर्कश वाणी में
मैं घबरा नरगिस से बोला,
" तेरे घर में कुछ हो तो ला । "
नरगिस तो थी निस्पंद खड़ी !
मैं समझ गया उस क्षण सब कुछ !
बोला, " नरगिस तू रो न बहिन !
ले मेरा हाथ शिथिल होता
जो तूने किया ठीक ही है
पर मुझको इतनी पीड़ा है
भाई का बदला ले न सका
मेरे आँसू क्या सूखेंगे ?
पर हत्यारे की हत्या कर
इस जीवन भर
तेरे आँसू क्या देख सकूँगा मैं नरगिस ? "
फिर उसी रात को हम तीनों
कफ़ना बैठे अपना नसीम !
दफ़ना बैठे अपना नसीम !

धीरे धीरे जलता प्रदीप !
घुलता प्रदीप !
जल रहा युगों से यह मन भी ।
चुपचाप घुल रहा जीवन भी ।
मैं व्यस्त उदर की चिंता में
घूमता डगर से डगर, नगर से नगर आज
मेरे नयनों की शाला में
शत शत सुख के रंगीन चित्र
घूमते सतत
घूमते निशा के अंधकार में
हो उज्ज्वल;
जग जब श्रम से हो शिथिल
स्वप्न का ही सुख लेकर सो जाता ।
तारों की गीली छाया में
मैं बैठा रहता एकाकी ।
क्या नरगिस को मैं याद आज ?
क्या कभी बहिन ने समझा है भाई का उर ?
जो सदा खेलते साथ साथ
लड़ते, हँसते
खाते, सोते

गाते, रोते
जब वही बड़े हो जाते हैं
तब वही दूर हो जाते हैं।
फिर एक दिवस
जब बहिन बड़ी हो जाती है
जिस घर में पली
उसी घर को
मंज़ा दे हाय 'पराये' की
'अपने घर' को जाने लगती
मा से मिलती
बहिनों से भी
भाभी से. सखियों से मिलती
मिलती पड़ोसिनों से रो-रो
उस समय भूल ही जाती है
भाई का भी उर दुखता है।
वह बड़ी होगई है इससे
करती दूरी से नमस्कार !
वह दूर जा रही है इससे
करती दूरी से नमस्कार
ओं' तुम नरगिस !

यह दीन देश
जिसमें रहने वाले प्राणी
अब तक इतना ही सीखे हैं
यह हिंदू है, यह मुसलमान !
यदि मुसलमान है बहिन
भला हिंदू भाई कैसे होगा ?
औ' तुम नरगिस
अब बड़ी होगयी हो इससे
तुमको क्या अब भी याद रहा
वह 'संबोधन' ?
तुमको क्या अब भी याद रहा
रोना - धोना हँसना पिटना ?

तारों की धुँधली छाया में
मैं बैठा रहता एकाकी
चुप प्राणों मे आता नसीम !
चुप आती नयनों मे नरगिस !
जैसे विद्युत औ' धूमिल घन !
वह मन में विद्युत भर जाता,
वह भर जाती दृग में आँसू !

जिसकी हत्या कर जीता हूँ

मैं इस क्षण भी हत्यारा-सा
क़ब्र में आज सोने वाला
वह समझेगा मेरी पीड़ा ?
उन आँखों में आएँ न अश्रु
इसलिए वह रहे हैं मेरी
फीकी आँखों से बड़े बिंदु !
वह समझेगी मेरे आँसू ?
वह समझेगी भाई का उर ?
तारों की झिलमिल छाया में
मैं बैठा रहता एकाकी
मैं बैठा रहता कायर - सा
मैं व्यस्त कार्य में यंत्र सदृश
मैं जीवित हूँ चेतन - शव सा !

———

श्यामा—

जब अंक भरता थका रवि प्रतीची का
मैं सिर उठा
अध्ययन-कार्य-मंदिर से
लेकर शिथिल अंग
लेकर जड़ित अंग
उस सांध्य वातावरण के सरित कूल
करने चला स्नान
धोने चला श्रांत
मन देह की जब डुबाने चला क्लांति;
ऊपर गगन नील
साकार हो ज्यों दलित की व्यथा मूक;
जब उड़ चले दूर
पक्षी अमित कोटि
मसिपात्र से झर पड़े श्याम ज्यों बिन्दु;
जब भर उठे प्राण तम से दिशा के

अभिशाप जैसे सिमटता हृदय मध्य:
नीचे चरण का
सहती रही भार काली सड़क दीर्घ;
लकड़ी तभी बेच
जाती हुई गाँव
यों ही अकस्मात्
मिलती कभी गाँव की बालिका एक।
जिस स्निग्ध श्यामल सड़क पर चरण-चाप
पड़ती थी मस्ती से
प्रातः को सन्ध्या को
आने में जाने में
उससे घनी श्यामता से सजा गात;
अपने ही केशों सी
अपनी ही भौहों सी
अपने ही अरुणाभ नयनों की धारा में
नीलम की नौका की पुतली सी
कज्जल की रेखा सी
सावन के मेघों सी
श्यामा रही,
किन्तु

केशों का
भौंहों का
पुतली का
काजल का
मेघों का
लेती हुई सार
वैसी लहरदार
वैसी ही चंचल थी
वैसी ही अल्हड़ थी
वैसी ही प्यारी थी
वैसी ही सजला थी
मेरी कभी आँख आशयविहीना
पड़ी बालिका पर
आयी तभी लौट
अब वह निकलती
कनखियों से मुड़कर
कभी देख लेती
अब वह निकलती
निरुद्देश्य-सा मैं
कभी मुस्कराता

मुझे क्या पता था
निरुद्देश्य भी मुस्कराना बुरा है !
आषाढ़ का मास
छायी घटा श्याम
बूँदें बरसतीं
मैं आगया झट सड़क के किनारे खड़े वृक्ष के तल
उसी एक क्षण में
देखा कि कोई चला आरहा है
भीगे हुए वस्त्र भीगा हुआ वक्ष
भीगा हुआ भाल भीगी लटें हैं।
घिरती घटा श्याम
धारा बरसती
विद्युत कड़कती
मैं मुस्कराया
कंधा उठा और पलकें उठा और गंभीर होकर
कहने लगी वह:
बड़े आदमी की
हँसी···
जानते हैं ?
ग़रीबों को बस मौत से कम नहीं है।

आँखें झुकीं
बहुत लज्जित हुआ मैं
निस्पंद था मैं।

सावन लगा फिर
संध्या हुई फिर
मैं जा रहा एक जनशून्य पथ पर
देखा कि कोई चला आरहा है।
टोका मुझे
और रोका मुझे
फिर रुँधे कंठ से वह
कहने लगीः चूक हमसे हुई जो···!
आगे हुई शांत
मैंने कहाः बात ऐसी न थी कुछ
मुझसे हुई भूल!
थी भूल ही किंतु!
तुम तो मुझे जानती भी नहीं हो
मैं भी तुम्हें जानता तक नहीं हूँ
जो जानते हैं···
वह बात को बीच से काट बोलीः
रहती यहीं पास के गाँव ही में

श्यामा मुझे गाँव के लोग कहते
मैंने कहाः ठीक !
मैं कह रहा था कि जो जानते हैं
वे जानते हैं···
फिर बात को काट कहने लगी वहः
यही तो
कि जो आप
पहचान हों या न हों, मुस्करा दें
भले आप मन से रहे
और···आगे ?
था व्यंग्य तीखा, मगर रोष में भर
मैं कह उठा फिरः
तुमने न सोचा, न समझा, न देखा
कि तुम कौन हो
और मैं कौन हूँ !
बात में विष उगलने चला और भी मैं
कि देखा भरीं अश्रु से श्याम आँखें।
निस्पंद था मैं
रहा सोचता मैं
फिर भूल में भूल मुझसे हुई आज

श्यामा ! सरल स्नेह को शब्द में भर
मैंने कहाः बावली होगयी है
हँस तो तनिक देख !
वह मुस्कराई
बोली कि अब गाँव को जाऊँगी मैं ।
मैंने कहाः तू मुझे भी दिखा घर ।
कहने लगी वह
गम्भीर सी हो
नहीं कुछ ज़रूरत
मैं हूँ अकेली
मेरे कहाँ घर !
है आम का बाग छोटा वहीं झोंपड़ी एक छोटी
हैं पक रहे आम
टप् टप् टपकते
सिर तोड़ देते
वहाँ बैठ कर आप फिर यह कहेंगे
तूने न सोचा, न समझा, न देखा
कि तू कौन है, और में कौन हूँ, तब ?
मैं हँस पड़ा
और वह मुस्कराई !

हम चल पड़े साथ
श्यामा गई आम लाने
इधर मैं
चुप सोचता था कि क्या होरहा है ?
क्यों हो रहा है ?
परिणाम क्या है ?
पड़ने लगीं मंद मीठी फुहारें ।
वह आगई गोद में आम भर कर ।
मैंने कहाः बैठ जा, देख श्यामा !
गाना अगर जानती हो तो गा कुछ ।
तुझसे नहीं भेंट अब हो सकेगी ।
वह चौंक कर पूछती थी दृगों सेः
अपराध क्या है ?
मैंने कहाः आज दो वर्ष बीते
इस आगरे में
थोड़ा-बहुत मोह हो ही गया था इस आगरे से
पर अब इसे छोड़ देना पड़ेगा
जो मोह करता किसी से कहीं भी
उसको उसे छोड़ देना पड़ा है
मेरी गई छूट है नौकरी आज

परसों चला जाऊँगा गाँव अपने।
श्यामा रही शांत, बोलीः किसी से
झगड़ा कहीं आपका होगया था?
मैंने कहाः तू न समझेगी श्यामा
हम हैं बड़े
चोट करते नहीं हैं कभी सामने की
मैं आगया,
नाम होने लगा कुछ
सहना उसे होगया जब कठिन
तब
सोचा इसे दूर करना पड़ेगा।
है बात इतनी
वैसे मुझे छोड़ने का सभी को
बड़ा दुःख है यह कहा जा रहा है।
हम हैं पढ़े
जो हृदय में हमारे
उसको कभी ओंठ पर हैं न लाते
हम हैं पढ़े लोग, हम हैं बड़े लोग
विष घोलते आँख से मुस्करा कर
मेरा बहुत आज भारी हुआ मन

गाना अगर जानती हो तो गा कुछ ।
श्यामा रही शांत गाने लगी फिर
पुरानी कथा है व्यथा से भरी है ।
किसी गाँव से दूर पनघट, वहाँ एक
बाला पथिक को पिला जल रही है ।
इधर झाँकती है तो जल कूप का
रूप को देखकर बस उमड़ सा रहा है
उधर देखती है पथिक दूरदेशी
उसे देख भूला खड़ा रह गया है
लजाती हुई पूछ ही बैठती है
इधर से कभी लौटना क्या न होगा ?
पथिक हाथ को थाम कर कह उठा तब
बनिज को अभी दूर मैं जारहा हूँ,
करूँगा तुम्हें दूध सी मोतियों से
बनाऊँगा सोने से सब अंग पीला
कहा बालिका ने बड़े खिन्न स्वर में:
मुझे मोतियों की नहीं चाह
सोना नहीं चाहिए
किन्तु यह भीख दे दो
कि तुम लौट आना ।

पथिक तो गया, नित्य ही बाट उसकी
भरी आँख से व्यर्थ ही जोहती है
रही जोहती बाट इतने दिनों तक
कि सिर के हुए सेत हैं बाल सारे
पथिक किन्तु फिर भी नहीं लौट पाया
किसी नागरी के गया जाल में फँस।
गला भर उठा गा सकी फिर न श्यामा।
अँधेरी निशा, दर्द के उन स्वरों में
धुला बह गया क्षीण अवसाद मेरा।
मैं उठ पड़ा
बीच से फिर विदा हो
सहज कट गया पथ
सहज आगया घर।
मिला पाराचतों से
मिला स्नेहियों से
मिला गुरुजनों से
मिला शत्रुओं से
बड़ी कामना थी कि श्यामा मिले फिर
नहीं किंतु इतना समय था कि जाकर
उसे भेंट पाता

हुई रात वह भी
कि जब आगए आगरा फ़ोर्ट पर हम।
बड़ी भीड़ थी
मैं उदासीन सा
दृष्टि नीची किए
ताकता व्योम को
यों समय काटता
व्यर्थ ही घूमता था
अकस्मात् श्यामा तभी दी दिखाई।
निकट आगई
दीर्घ आँखें उठा
भर उदासी दृगों में
रही पूछतीः आप सच जारहे हैं ?
मैं चुप रहा
ताकता मुख मलिन वह
यही सोचता था
कि इतने बड़े
शहर में परिचितों की नहीं थी कमी
किंतु मेरी विदा का
हुआ क्लेश केवल इसी बालिका को !

मैंने कहा: हाँ अभी जा रहा
तू दुखी हो न श्यामा !
कहने लगी वह
कि मैं भोर से
आपको खोजती थी ।
घुमड़ने लगीं श्याम बदली क्षितिज में
उमड़ने चलीं श्याम बदली नयन में ।
रोने लगी वह
मैंने कहा: बात क्या है बता तो ?
कहने लगी: बात अच्छी नहीं है
मरते समय पास अपने बुलाकर
बापू हमारे
हमें दे गए थे जड़ी एक छोटी
इसे आप ले लें
वे कह मरे थे
कभी काट ले साँप तुझको विषैला
इसे तू चबाना
अमर ज़हर का तब नहीं कुछ पड़ेगा ।
मैं क्या करूँगी ?
इसे आप ले लें ।

रोना यही है कि मन में हमारे
न जाने बुरी बात क्यों सूझती है ?
रोती रही वह
खड़ा मैं रहा किंतु पाहन अचल-सा ।

फिर आगई ट्रेन
फिर चल पड़ी ट्रेन
जीवन पलों सी
काँपा किए लक्ष तारक गगन में
उर-स्पन्दनों से
घूमा किए वृक्ष
घूमा किए खेत
आहत जनों से
या पागलों से
उद्दाम झंझा गरजने लगा तब
बाहर अँधेरा घना छा उठा शीघ्र ।
काले भयंकर निशाचर सदृश शत
उड़े जा रहे छा रहे व्योम में मेघ ।
विद्युत लपकती
कड़ कड़ कड़कती
धारा बरसती ।

जड़ीभूत-सा एक खिड़की सहारे
रहा ताकता दृश्य मैं वह भयावह ।
वहीं सामने शिक्षिता एक बाला
विदा हो किसी से
पता यह नहीं वह कहाँ जारही थी
पहन चूड़ियाँ एक कर में पचासों
रहीं किंतु दो चार ही दूसरे में
मुझे लक्ष्य कर सहज परिचित स्वरों में
कहा : आप खिड़की ज़रा बन्द कर दें
बला की लपक आज बिजली रही है
उर काँपता है ।
सुना अनसुना कर
तिरस्कार की दृष्टि हल्की उठाकर
रहा ताकता दृश्य मैं वह भयावह !
जड़ीभूत-सा मैं !
दुर्भाग्य सी घोर उस कालिमा में
जिसमें नहीं मार्ग देता दिखाई
उर चीर दे पाहनों का पलों में
वैसी कड़क में
उस बाढ़ में जो डुबादे सभी कुछ

बहा दे सभी कुछ
जिस दृश्य को देखकर दूरसे ही
उर काँपता शिक्षिता बालिका
नागरी प्रेमिका का
उस कालिमा को
करती हुई तुच्छ
उस बाढ़ को दृढ़ चरण से कुचलती
सौदामिनी को
दीपक बनाकर
श्यामा हमारी चली जारही है
बढ़ी जारही है !

सुषमा—

मुझको आशा तक न थी
लिखेगी
सुषमा
पहुँच
प्रयाग
विश्वविद्यालय में।
जब इंटर की दे रही परीक्षा थी सुषमा
मैंने कुछ उपयोगी बातें
घर पर जाकर बतला दी थीं।
वह थी स्वभाव से
शांत,
नम्र,
गंभीर।
पत्र उसका पाकर
मैंने उत्तर में लिखा: तुम्हारी जो सुख दुख की बातें हों

तुम समय समय पर
जब चाहो
लिखती रहना।

फिर मिला दूसरा पत्रः
मुझे
खलता है एक अभाव
नहीं मेरा अपना भाई कोई।
मैं रहा शांत।
फिर पत्र मिलाः
क्या कोई ऐसा जीव नहीं
इस अखिल विश्व में भूमा की
जिसकी वीणा में
करुणा रागनी इस उर की
बज सके?
मांग का वह पत्थर
मैं
जिसे सभी ठुकरा जाते?
क्या मेरे मन का नहीं प्रयोजन
इस जग में?
सबने इसको

बस एक उपेक्षा
तिरस्कार की भेंट सुरक्षित रख छोड़ी ?
मेरे उर की प्यारी निधियाँ
पतझड़ के पीले पत्तों सी
केवल सूने में झड़ा करें ?

मैंने सुषमा को लिखा : बहन !
तुम भाग्यशालिनी हो,
तुमको
ऐसा मर्मी अंतर दे कर
विभु ने
पृथ्वी पर भेजा है।
यह निधि न बखेरो
इसे
कलात्मक काव्य-सृष्टि में निरत करो।
जो सुप्त तुम्हारे अंतर में
है
भरा पीर से
कलाकार
तुम उसको सजग करो
जगती

देखेगी तुमको विस्मित हो।
जब लगी श्रावणी
बंद लिफ़ाफ़े में
भेजी मुझको राखी।
विजयादशमी आई
आए
अक्षत-कुंकुम!
पत्रों मे मुझको लिखा:
स्नेह-बंधन है यह जीवन भर का
मुझको ऐसा लगता
जैसे
तुम पूर्व जन्म के
मेरे बिछुड़े भाई हो
तुमको कितनी कठिनाई से
इस कोलाहल में पाया है।
और भी वाक्य थे कुछ
जिनमें
ममता, पवित्रता, त्याग, स्नेह, सेवा, उज्ज्वलता
और
आत्मा-सम्बन्धों

कुछ चर्चा थी !
फिर बीत गए दो वर्ष।
नहीं कुछ भी सुधि
सुषमा की पाई ।
संध्या का समय
इलाहाबाद जंकशन पर
कवि-गोष्ठी मे पढ़कर कविता
मैं जब लौटा
घर आने को,
देखा सुषमा आरही सामने से
मुझको जो हर्ष हुआ
आकस्मिक
उसका क्या कहना ?
जब सुषमा आई निकट कहा मैंने : सुषमा !
सुषमा के पति थे साथ
तनिक पीछे;
अप्रतिभ
सुषमा क्षण भर को !
हुआ उसे क्या ?
क्यों विमूढ़-सी ?

पति आगए समीप
कहा : क्या है, डीयर ?
वह बोली : कुछ भी नहीं !
'यही वह सुषमा है ?'
मैं रहा सोचता
किंतु उसे
संकोच न हो
मैंने पूछा फलवाले से :
तुम दे सकते हो चेन्ज ?

आज मैं
अपने सारे पत्रों को
जब कभी उलटने लगता हूँ
खिसिया कर कभी पूछ लेता :
मिस्टर मानव
कैसे मिज़ाज हैं ?
क्या समझे ?
कितना दम है इस राखी में
जो बन्द रहेगी इसी लिफ़ाफ़े में
तब तक
जब तक शरीर में साँस

बंद;
कितना दम है
इस पुड़िया मे
जिसमें अक्षत हैं बँधे ?
चूर्ण जब तक न हड्डियाँ हो जायें
तन की
श्मशान मे
बाँसों से,
ये कर परिवर्तित रूप
अश्रु उज्ज्वल बनकर
बहने आते
पर बह न सके
इनकी
मिति ही कुछ नही;
महाशय
क्या रँग है
इस रोली का ?
जब तक न धधकती चिता-ज्वाल
तब तक जिसकी
लालिमा रँगेगी आँखों को।

पृथ्वी से तो उठ गया शब्द
कोष ही खोलकर
देख
अभागे
अर्थ
लिखा
कुल
'भाई'
का !

मिस वायलेट

हमारे एक मित्र ने कहा
धार्मिक रहस्यवाद का
उचित अध्ययन
करना है
तो आप
कभी मिस वायलेट से मिलें।

नगर के बाहर—
उनका छोटा सा बँगला
चढ़ रहीं दीवारों पर बेल
खिल रहे रंग बिरंगे पुष्प
बँधा झबरा सा कुत्ता एक।
और मिस वायलेट
जिनका—
साँवला रंग
गात दुबला

ओंठ पतले
उँगलियाँ
लम्बी-पतली
कलाकार की सी !
गया मैं पाँच मिनट को था
किंतु बातों बातो मे ही
एक घंटे से पहले हम
उठ सके नहीं ।
पूछती रही
हमारी हिंदी में जो
रहस्यवाद का रूप
उसी की बात ।
महादेवी, प्रसाद से और पंत से
या कबीर से
कर थोड़ा अनुवाद
सुनाता रहा
बीच में वे
टोकती रहीं
समीक्षा सी करतीः
ओह यस

शी इज़ पैथेटिक ऐन्ड डीप ।
ही इज़ पैशॅनेट ऐन्ड ड्राइ ।
'पंट' इज़ फ़ॉर्म ऑल ओवर ।
ऐन्ड दिस मेन्ट...
ही इज़...
मोर ऑव एन एक्सेन्ट्रिक ।

रहा मैं जब तक काशी में
किसी भी भाँत
बचाकर समय
रात को शनि की
उनसे
मिल ही लेता था ।
एक सुख सा मिलता मिलकर
उस समय वायलेट की रही
अवस्था
मुश्किल से पच्चीस
वर्ष की ।
और कहीं जो क्षोभ
हुआ करता
उसका तो

चिह्नमात्र तक नहीं।
वहाँ जब हम करते बातें
हमारे सिर पर बैठी नहीं
नौकरानी कोई वृद्धा !
कभी 'टी' पीने में सहसा
उँगलियाँ छू जातीं
तो उन्हें
काटकर फेंक डालने को
कभी उद्यत वह होती नहीं।
एक सेकिंड बाद ही वह
नहीं आशा यह करती रही
मुझे उसको कहना है बहिन !
बहुत सी सुख दुख की बातें
बीच में होती रहती थी
उसे पर एक शिकायत थी
कभी हँसकर कहती :
यू आर
मोर शाई...दैन...ए गर्ल।
कभी मानव स्वभाव का
विश्लेषण

वह करती इतना खरा
कि मैं
हो उठता सहसा चकित ।
नारियों के स्वभाव पर
एक रात
जब चलती थीं बातें
कहा तब वायलेट ने:
कभी भूल कर
कोई युवती हो
अन्य युवती की उमरे—
सखी रही हो
या बहिनें ही हों—
प्रशंसा
रूप, वस्त्र, बुद्धि की
न करना
इतना रखना याद ।
और सबसे जीवन में
अगर
सफलता की मन हो चाह
वी कर्टियस

ग्रेन्ड स्ट्रीट ।

पड़ा मैं एक बार बीमार
बहुत दुर्बल मैं
बहुत उदास
एक संध्या को
आई
वायलेट
हँसती पर होती व्यय ।
दक्ष वह इतनी थी
मुझको
हँसाती रही बराबर
जब तक बैठी रही ।
अगर बीमारों को हो प्राप्त
निकटता वायलेट की कहीं
डाक्टर की, या औषधि की
किसी की सेवा की भी नहीं
रहे फिर आवश्यकता कुछ ।
आज वह बिछुड़ गई काशी !
नगर कितने ही छूटे आज !
बहुत से बन बन कर

दो चार दिवस
रह
टूट गए सम्बन्ध !
कभी मिस वायलेट से
नहीं रहा
मन का गहरा संपर्क।
उधर से पत्र न आते हैं,
इधर से पत्र न जाते हैं;
किंतु आपस की
स्निग्ध सहानुभूति वह
कितनी थी
आभप्रेत !
कभी तो
किसी किसी के
प्रेम-भाव से भी
लगती
जो
मधुर !
कभी सुख की स्मृतियों के बीच
न जगती

वायलेट की याद ।
किंतु मैं होता जब जब रुग्ण
रुग्णता में मैं अधिक उदास
उदासी में मैं कभी हताश
तभी
मेरी शय्या के पास
मधुर अधरों में
भर मुस्किान
दीप्त करने विषाद का वक्ष
डालने आसपास आलोक
उदित
हो उठता
आनन
एक !

आरती—

नव सेकेंगड शो से
गानों की
पिक्चर को देख
मुग्ध होकर
मैं बाहर निकला 'हाउस' से
ताँगे वाले घिर तो आये
पर दूने दाम न पाने से
चुप लौट गए।
पल भर में ही
हॉर्न की गूँज
घोड़े के टापों की ध्वनियाँ
ताँगे वालों के गानों की
शत शत टेकें
खो गईं शून्य म,

कारों की
बिजली की आँखें,
ताँगों की
धुँधली सी चिमनी,
और
सिगार जलाने को
चट मैचस्टिक की क्षणिक झलक
मेरी आँखों से हुई दूर
मुझको आँखें दिखलाती सी;
मैं एकाकी
शीत का काल
साथी था केवल अन्धकार
ऊपर नक्षत्र व्यंग्य करते
मेरी व्यवहार-अपटुता पर।

मैं प्राय भूल जाता हूँ मग
छोटी से छोटी नगरी में
यदि गली सामने आजाती
अपने घर का
वह चक्र-व्यूह सा लक्षाधिक देशी परदेशी जनाकीर्ण
रंगों का परिचय-हीन नगर

मैं खोया-सा
मेरी व्यस्तता बढ़ाने को
घिर आए नभ में श्यामल घन
असमय
सहमा !
बूँदों का भय उतना न रहा
जितना सूट के बिगड़ने का
मैं खड़ा हो गया
अन्धकार में
एक सहारा सा पाकर
ऊँची मित कोठी की पहली
मँजिल से
सम्बन्धित
ठंडी
दृढ़
काली
तीली थाम
एक भारी लोहे के फाटक की ।
धोती कुर्ते में एक वृद्ध
उतरे ऊपर से

कंधों को
शॉल से ढके
मुसकाते से
बोले मुझसे
आइए चलें।

उस स्वागत के आकर्षण में
खिंच गया तीसरी मंज़िल तक
छोटे से कमरे में
ढँग से
दो सोफ़े थे
कुर्सियाँ कई
बीच में एक थी गोल मेज़
चिकनी छोटी
दीवालों के कोनों से सट
रंगीन तिपाई के ऊपर
था धूपदान
जिसमें धूप की शलाकाएँ
दे रहीं गंध।

वृद्ध ने अंगीठी ला रखदी
मन से कृतज्ञ

मैं चुप बैठा
मैं विस्मित-सा
मैं सोच रहा था: सज्जनता
पृथ्वी पर अभी शेष है कुछ।
पर जब मुझको बैठे बैठे
कुछ देर हुई
मैं बाहर जाने को आकुल
झुँझलाया तब:
क्या अर्थ अनुग्रह का ऐसे?
मै यहाँ अकेला बैठा हूँ
अपमानित-सा।
इतने मे दासी ने झुककर
मृदु नम्र स्वरों मे कहा: आप अन्दर आवें
स्वामिनी सोगई थीं सहसा
झपकी लेकर
मैं बोला: उनसे क्षमा माँगना
यों मैं अंतर मे कृतज्ञ
पर मुझे पहुँचना दूर अभी
तुम नीचे तक पहुँचा आओ।
वह बोली: नहीं...नहीं....रुकिये।

इतना कह कर
झटका सा खा
चट चली गई
मैं सोच रहा
अद्भुत !
यह कैसा इन्द्रजाल !
हाँ, इन्द्रजाल !
नयनों को गोचर हुई एक
लावण्य-राशि !
उस अन्धकार में ज्यों विद्युत की एक मूर्ति
यह जागृत अथवा स्वप्न-लोक
निश्चित करने को मैंने चुप
धीरे से एक चिकौटी ली
अपने तन की
फिर हुआ पारिस्थिति-परिज्ञान !
बोला: जब जगा अतिथियों को
सुख से सोजाते आतिथेय···
आलोक-मूर्ति मुस्करा उठी
बोली: बाहर अवलोको तो
क्या गहराया है अंधकार

उर के विषाद-सा
बिखर रहीं चुप चुप बूँदें
निष्फल आँसू-सी
यह विद्युत
आहत हिरणी-सी बदल रही रह रह करवट।
तुम अभी नहीं जा पाओगे
चुप चलो उधर।
मैं सचमुच चुप हो लिया साथ।
लम्बे से कमरे में आया
जो रहा सुसज्जित चित्रों से
नग से निर्झर झर रहे कहीं
जलयान चीरता कहीं
नील सागर की क्षुब्ध हिलोरों को
खय्याम कहीं बैठा लेकर
कर में प्याला!
लम्बी शेल्फ़ों में
अँगरेज़ी बँगला के शत शत भरे ग्रन्थ;
दहका लोहित
फ़ायर-प्लेस।
वन मिनिट।

लौटकर जब आई
बोलीः कोने के कमरे में
पहिले जाकर कपड़े बदलो
धोती बिल्कुल है नयी
पास में चादर है
बी क्विक प्लीज़ ।
मेरे आते ही स्मिति-उज्ज्वल
आनन में भर अद्भुत मिठास
किञ्चित गंभीर मन्द स्वर से
बोलीः यह भी है पता
आप हैं कहाँ आज ?
मैं बोलाः मैं हूँ वहाँ
जहाँ से और अधिक उपयुक्त जगह
इस समय नहीं पा सकता था
अच्छा ही है हूँ यहाँ आज
अपने जीवन में प्रथम बार !
तुम तो अनभिज्ञ नहीं इतनी
इतना गन्दा यह देश कि
जिसमें अगर सड़क पर जाती हो
भाई के साथ बहिन कोई

सङ्कोच रहित होकर जिसके
मन में आता
वह कह उठता
जो रहा प्रेमियों का जोड़ा।
जो कहलाते संभ्रांत, शिष्ट, शिक्षित, कुलीन
इस तम से भरी निशा में
परिचय हीन
एक परदेशी को
दे सकते थे क्या जगह आज ?
इन कपड़ों की माया से मैं
चोर तो नहीं समझा जाता
पर यह तो है युद्ध का काल
घूमता सड़क पर देख मुझे
यदि पुलिस पकड़ निश्चय करती
मैं जापानी जासूस मात्र
तब क्या करता ?
अच्छा ही है, हूँ यहाँ आज।
पर मैं भी हूँ कितना अभद्र !
जिसने इतना उपकार किया
नाम तक नहीं पूछा उसका !

मुझको कहते, 'आरती'
किंतु·····
मैं बोला: जैसी होती हैं
देश की लड़कियाँ बंगाली
प्रेम की मूर्ति, अति भावपूर्ण
वैसे ही उनके
भाव भरे
संस्कृत
सुउच्चरित
मधुर नाम।
भावुकता तो
केवल उनका सौभाग्य शुद्ध कुल की हैं जो
पर हम तो करतीं
प्रणय-पण्य का
कुत्सित-सा व्यापार मात्र!
मैं बोला: यह तो अपने पर अन्याय एक
आक्षेप आपका सारहीन
अनुचित सा है
अनुभव कहता है बात और।
मेरे छोटे से जीवन में

जब से चेतना प्रबुद्ध हुई
मैं खोज रहा हूँ एक हृदय
अगणित मूर्तियाँ मिली पथ पर
पर नहीं अभी तक मिला मुझे
नारी का उर।
मैं जिसे बिठाना पास चाहता
वह श्रद्धानत हो सहसा
मेरे चरणों में आ बैठी,
है रहा किसी को रूप-गर्व
इतना भारी
वह नहीं स्वयं को सकी देख
पहचान मुझे तब क्या पाती ?
कुछ आई ले कर प्रणय-दंभ
पर मेरा कृत्रिम एक स्नेह-
अभिमान नहीं सह पाई वे
समझा अपने को अपमानित
वे रूठ चलीं,
कुछ हैं जो चुप चुप रोती हैं
रजनी के गाल भिगोती हैं
पर आकर निकट बदल जातीं

मर जायेंगी
पर नहीं कहेंगी
कभी हृदय की मूक पीर
गम्भीर प्रेम की राजनीति
यह मुझ को नहीं सुहाती है;
हैं अन्य कि जिनके प्रणय-पंथ में
कोई हर्षावेग नहीं
उद्वेग नहीं
कोई नवीनता नहीं
लीनता नहीं
जो हृदय प्रेम से भरे
मान से भरे
विरह के विकल गान से भरे
भीरु वे इतने हैं
सह सकते तीखी नहीं दृष्टि
इस बाह्य सृष्टि के घोंघों की
कह दिया किसी ने कल ही कुछ
हो गए दीन
सहसा विलीन।
पर बात व्यक्तिगत भली नहीं

फिर भी मैं आज समझ पाया
वेश्या के भीतर नारी जो
उपयुक्त संगिनी वह नर की
आरती खिलखिला उठी लगी कहने: कैसे?
वेश्या के भी है हृदय
जानते सब इतना
वह भी नेह को तरसता है
औरों को कुछ मिल भी जाता
वह नित्य देखता है अभिनय
जितना वंचित होता है वह
होती है उतनी तृषा तीव्र;
यह हृदय मुक्त-पंखी है वह
जो साथ साथ उड़ सकता है
जीवन के
तममय
झंझामय
नभ के रहस्यमय
अन्तर में।
बाँधता किसी को नहीं
नहीं बँधता

वैसे
है बँधा हुआ भी
और डालता बन्धन भी;
यह मुक्ति प्रणय के बन्धन की
जीवन का निर्मल शाश्वत रस;
यह हृदय जानता है जितनी
अधरों की, नयनों, भौंहों की
जानता कला कोई उतनी ?
इस हृदयमयी के
पलक खोलने के ढँग में
अँगड़ाई लेने में
उठने
मुँह धोने में
अनुनय में
कुंठित होने में
जो रस है
जिससे भरता जीवन का सोता
अन्यत्र कहाँ ?
इस घर को जिस क्षण छोड़ रहा
मैं झुँझला कर

जगती की कोई विनय उस समय
मुझे रोक सकती थी क्या ?
तुमने आकर
पूछा भी नहीं कौन हूँ मैं ?
कैसे आया ?
क्यों बैठा हूँ !
सहसा शासन के शब्दों में
टोका मुझको
वह शासन यद्यपि कृत्रिम था
पर रहा तरसता जीवन भर
मेरे अंतर का सुप्त भाव
मेरे ऊपर
मेरा नेहीं
शासन करने वाला होता।
आरती सुन रही
पलक उठा
मेरी आँखों में आँख डाल
धर चिबुक हथेली पर
उँगली—
दाँए कपोल को दबा रही

बाँए कपोल पर झलक रहा
काला गहरा तिल एक
सार मानो सृष्टा की पुतली का !
नीची बरौनियाँ हुईं
कहा फिर भर गहरी निश्वास :
उठें हम
भीतर चलें
यहाँ बैठे
आगये पसीने
पलक तुम्हारी झँपती सी
घिर रही नींद ।
हम भीतर पहुँचे
व्यस्त आरती
हुई चाय की खटपट में ।
मैं कला निरखता उन उँगली की
चकित
और आभारी भी
कुछ समझ नहीं पाया
उसने
कैसे अंतर में झाँक

चाय की मेरी अपनी
दुर्बलता को पहचानो ?
कैसे समझा
जितनी प्रसन्नता
इस क्षण मुझको 'टी' देगी
उतनी
कोई भी अन्य वस्तु
सृष्टि की नहीं दे पायेगी ?
मैं बोला: बैठे ही बैठे
हो जायेगी यह निशा शेष
जगने का है अभ्यास मुझे
तुम को भी तो !
आरती ओंठ में मुसिकाई :
बहकाने का कुछ काम नहीं
पृथ्वी पर बिस्तर लगा हुआ
चादर है नई
धुली
मैंने
दी तुम्हें रज़ाई नहीं
मिलाकर दो कम्बल रख छोड़े हैं

पर्दे को हटा
सामने के
कमरे में जो अलमारी है
उसमें से प्याले ले आओ।
मैं पूछ उठा :
जब हमें आत्मा की वाणी
को दबा
चरण रखने पड़ते
तब सिहर नहीं उठता क्या तन ?
: पहिले तो मेरा आत्मा में
विश्वास नहीं
जन्मान्तर को
मैं नहीं मानती
पाप-पुण्य को
जिस अर्थ में समझते तुम
मैं नहीं समझती
ईश्वर को
जो रूप दे रखा है तुमने
मैं नहीं देखती
फिर भी जिस ग्राहक ध्वनि में

तुमने आत्मा का लिया नाम
उसकी ध्वनि कितनी क्षीण
नित्य ही देख रहे हो जीवन में
जिस क्षण घातक
पशुओं की दीन दृष्टियों पर
उनकी कराह पर
दे न ध्यान
काटता गला
जिस क्षण सत्ताधारी समाज का
छोटे से छोटा शासक
सब के आगे
अपने निर्धन अपराधहीन भाई के ठोकर लगा रहा
जिस क्षण अन्धी कोठरियों में
कोई शरीर को देता है
विद्रोही भाव कुचलने को
यातना घोर
उस समय कहाँ दब जाती है
यह ध्वनि शाश्वत ?
सब कुछ केवल अभ्यास मात्र
संस्कार मात्र

संस्कार बिगड़ते रहते हैं
बनते रहते
संस्कार बदलते रहते हैं
इससे
जीवन का पक्ष अशोभन नहीं समर्थन करती मैं
केवल इतना ही कहना है
सब कुछ स्थिति पर निर्भर रहता।
मेरा अन्तर तो मुकुर मात्र
जैसा जिसका आनन होगा
वैसा प्रतिबिंब उठेगा
बस;
छल केवल छल
विश्वासघात मुझसे केवल विश्वासघात
क्रीड़ा—क्रीड़ा
नेह से भरा मन नेह साथ ले जावेगा
यह भले बुरे का प्रश्न
अर्थ रखता कितना ?
हमसे समाज ने जोड़ लिया
कुछ हीन भाव
कुछ घृणा भाव

कल को यह भाव बदल जावे
दिन के प्रकाश में आयें सब
उस गर्व भाव से
जिससे जाते
मंदिर में
मसजिद
गिरजे
सत्संगों में !
उस हर्ष भाव से
जिससे जाते उत्सव में
उस व्यस्त भाव से
जिससे जाते
विविध कर्म की शाला में !
तुम कैसा प्रश्न उठा बैठे ?
कितनी सुन्दर यह निशा श्याम ?
यह अमा घोर !
देखो तम को !
तारों को !
बूँदों !
विद्युत को !

यह पाप-पुण्य
सत्-असत्
आत्मा
औ
अनात्म की
स्वर्ग
नरक की
उलझन तो
सुलझी न आज तक !
कभी नहीं सुलझेगी यह !
देश की दार्शनिक-प्रतिभा ने
जितना
माया पर
संयम पर
उपराम-भाव पर
लिखा
कहीं
वह विश्लेषण करती मन का
मन के नकार का नहीं
रहस्यों का मन के

जो सृष्टि तत्त्व से
अधिक मधुर हैं !
अधिक सूक्ष्म हैं !
अधिक गहन !
कोई बतला देगा
उर में
क्यों होती है
यह भाव-सृष्टि?
सोते भावों का
जो जागृत सौंदर्य
कभी उस पर सोचा है
परदेशी ?

चुप हुई आरती
डूब गई
ज्यों मानस की गहराई में
नयनों की सीपी में छोटे
दो उज्ज्वल मुक्ता भर लाई ।
मैं स्तब्ध
यामिनी स्तब्ध
झाँक कर खिड़की से

नक्षत्र ताकते थे इकटक–
अब क्या होगा ?
'आरती !'
आरती चौंक पड़ी
आगई निकट
बोली : अबतक मेरा हँसने का रहा साथ
पर आज न जाने क्यों मन में
रोने की साध समाई है ?
तुम अपना कन्धा दे दो तो
मैं चुप रो लूँ
हल्की हो लूँ
पर मेरी तो विश्वास-अमूला रही जाति
रोना कृत्रिम !
हँसना कृत्रिम !
मैं बोला: मेरा खोटा है नक्षत्र
आरती !
जिससे भी सम्बन्ध रहा
उसको ही दुख देकर आया
मैं
नहीं जानतीं तुम

कि
किसी का छूता कभी शरीर नहीं
मैं नहीं चाहता था कहना
है कहीं एक मुख जिसे देखने को मैं आज तरसता हूँ
उसका विश्वास न खो जाये
वे मुझसे वैसे विमुख आज
पर मैंने जो विश्वास दिया
उससे मैं कैसे मुख मोड़ूँ ?
तुम पी न सकोगी ये आँसू ?
तुमने ही तो था कहा अभी
सब कुछ केवल अभ्यास मात्र
तुम हीं संयम से काम न लोगी
तो फिर……?
इतना तो सोचो
मेरे कन्धे पर अश्रु ढाल
तुम उसे बहा दोगी उर से
जो अन्तर में आ बैठा है
वह रक्त मांस की दुर्बलता से
बना अशोभन नहीं व्यक्ति
वह चिर उज्ज्वल !

वह चिर संगी !
मैं चला यहाँ से जाऊँगा
फिर भी वह विदा नहीं लेगा
मेरा पथ काँटों भरा
तुम्हारा नहीं जानता कैसा है !
वैसा ही कुछ कुछ
उससे भी
तमपूर्ण विषम हो सकता है ।
मैं कुछ भी हूँ
पर कभी नहीं सीखा मैंने
विश्वासघात ।
मैं चिर कृतज्ञ !
मेरे विषाद की···भादों को
जिस जिसने अपनी विद्युत की
हल्की से हल्की
सहज मधुर मुसिकानों से
आभार जताये बिना
कभी आलोकित किञ्चित् किया
हृदय से मैं कृतज्ञ हूँ उन सब का ।
मैं नहीं व्यंग्य से घबराता

मैं नहीं घृणा से सकुचाता
रोष से नहीं आतंकित मैं
पर मैं सचमुच खो जाता हूँ
जब मेरे प्रति
ममता भर कर
कोई कोमलता दिखलाता
मैं विवश आज
मेरे अंतर की अक्षय-निधि
पर
पड़ा हुआ है ताला सा !

कुछ दिवस बाद
जब भूल चुकोगी तुम मुझको
उसके भी कितने दिवस गए तक
याद रखूँगा मैं तुमको
आरती !
उठो !

आ गया सड़क पर मैं
देखा
तम पीता सा नीहार
और नीहार प्रकाश चाटता सा

नभ की आँखें सूखी-सूखी
सूनी-सूनी
ऊषा की अरुणाई फैली
ज्यों रोने से
होगए गगन के नयन लाल
उस कुहरे से
झाँई सी लोचन में छाई
नीले नभ के
दिखलाई देता नहीं पंथ,
दूर पर
झुकी
बाँस में बाँध कर एक घनी छोटी झाड़ू
गा रही
महतरानी :
बाबा !
जीमन भारी ।
जोबन भारी !